हुसैन (अ0) मेअराज–ए–इन्सानियत

सैयेदुल उलमा मौलाना अली नक़ी साहिब क़िब्ला (ताबा सराह)
अनुवादक – मौलाना सुफ़यान अहमद नदवी साहिब

पैदाइश – 3 शाबान, 3 या 4 हिजरी
शहादत – 10 मुहर्रम 61 हिजरी

जिस तरह हज़रत इमाम हसन (अ0) की पैदाइश के बारे में दो क़ौल है 2 हिजरी और 3 हिजरी उसी तरह से इमाम हुसैन (अ0) की पैदाइश के बारे में दो क़ौल हैं 3 हिजरी और 4 हिजरी। अगर उनकी पैदाइश 2 हिजरी में हुई तो इनकी 3 हिजरी में है और अगर उनकी पैदाइश 3 हिजरी में है तो इनकी 4 हिजरी में पैदाइश हुई है। इसी तरह रसूल (स0) की वफात के वक़्त इनका छटा या सातवा साल था।

उस ज़माने और उसके बाद अमीर (अ0) के ज़माने में जो कुछ हसने मुजतबा के बारे में कहा जा चुका वह हुसैन (अ0) की सीरत से बिलकुल जुड़ा हुआ है इसलिए कि एक साल के फ़र्क़ से कोई एहसासात, तास्सुरात और ज़रूरतों में कोई फ़र्क़ नही होता। जिन वाक़ेआत से जितना वह मुतास्सिर हो सकते थे उतना ही यह असर ले सकते थे। रसूल (स0) की वफात के बाद से 25 साल का ज़माना जो अमीरुलमोमिनीन ने किनाराकशी इख़्तियार करके गुज़ारा वह जिस तरह उनके लिए आज़माईश का ज़माना था उसी तरह इनके लिए भी था। जो जो हालात सामने आ रहे थे वह इनके सामने भी थे बल्कि इमाम हसन (अ0) को तो दुनिया ने सिर्फ नर्मी करने वाले और शान्ति चाहने वाले की हैसियत से पहचाना इसलिए वह उस ज़माने में उनके इम्तिहानों की बड़ाई को आसानी से महसूस न करे मगर हुसैन (अ0) को दुनिया ने आशूर के दिन की रोशनी में देखा और बड़ी इज़्ज़त और शर्म वाला, खुद्दार, गर्म मिज़ाज और आगे बढ़ने वाला समझा है इस रोशनी में 25 साल की खामोशी के ज़माने पर नज़र डालिये, साफ है कि इनकी जवानी की मन्ज़िलें वही थीं जो हज़रत इमाम हसन (अ0) की थीं। 25 साल की मुद्दत के पूरा होने पर वह तेंतीस साल के थे तो यह बत्तीस साल के, जैसे उम्र के हिसाब से हुसैन (अ0) उस वक़्त अब्बास (अ0) थे। कर्बला में जो अब्बुलफ़ज़लिल अब्बास की जवानी का ज़माना था वह 25 साल की किनाराकशी के बाद हुसैन (अ0) की जवानी का ज़माना था। इस उम्र तक वह सारे क़िस्से सामने आते हैं जो उस ज़माने में पेश आते रहे, और इमाम हुसैन (अ0) खामोश रहे। मुसीबतों और परेशानियों के वह सारे झोंके आए और उनकी खामोशी के समुन्द्र में मौजें न पैदा कर सके।

इनके 25 साल हज़रत अली (अ0) की मक्के की ज़िन्दगी के 13 साल के बराबर हैं वह रसूल (स0) की ख़ामोशी के साथी, यह हज़रत अली (अ0) की खामोशी के साथी। वह हज़रत रसूल (स0) पर ज़ुल्म देख रहे थे जो उनके मजाज़ी (ग़ैर हक़ीक़ी) हैसियत से बाप थे और यह हज़रत अली (अ0) पर ज़ुल्म देख रहे थे जो इनके हक़ीक़ी हैसियत से बाप थे जिस तरह वहाँ कोई तारीख़ नही बताती कि किसी एक बार भी अली (अ0) को जोश आ गया हो और रसूल (स0) को अली (अ0) को रोकने की ज़रूरत पड़ी

हो, उसी तरह कोई रिवायत नहीं बताती कि इस 25 साल के लम्बे ज़माने में कभी हुसैन (अ0) को जोश आ गया हो और हज़रत अली (अ0) ने बेटे को रोकने की ज़रूरत महसूस की हो या समझाने की कि यह न करो, इससे हमारे मक़सद या उसूल को नुक़सान पहुँचेगा।

इसके बाद वह वक़्त आया कि जब हज़रत अली (अ0) ने जिहाद के मैदान में क़दम रखा। तो अब जहाँ हसन (अ0) थे वहीं हुसैन (अ0) भी थे वह बाप की दाहिनी तरफ तो यह बायीं तरफ। हर लड़ाई में अमली हैसियत से शरीक हैं। इसके बाद जब सुलहनामा लिखा गया तो जहाँ बड़े भाई के दस्तख़त वहीं छोटे भाई के दस्तख़त। जनाब अमीर (अ0) की शहादत के बाद इसी तरह यह हज़रत इमाम हसन (अ0) के साथ हैं जिहाद में भी और सुल्ह में भी। अबुहनीफा दनेवरी ने अलअख़बरुत तिवाल में लिखा है कि सुल्ह के बाद दो शख़्स इमाम हसन (अ0) के पास आए। यह जज़्बाती क़िस्म के दोस्त थे सही समझ नहीं रखते थे उन्होंने सलाम किया :–

''अस्सलामु अलैइका या मुज़िल्लुल मोमिनीन''

''ऐ मोमिनों को ज़लील करने वाले आपको सलाम हो''

यह अपने ख़याल में मोमिन हैं जिनका यह एख़लाक़ है और यह उनका बड़ा एख़लाक़ है कि ऐसे अलफाज़ के साथ जो सलाम हो उसका भी जवाब देना लाज़िम समझते हैं और मलामत के साथ फरमाते हैं।

लस्तो मुज़िल्लुहुम बल मुइज़्ज़ुहुम

मैंने मोमिनों को ज़लील नही किया बल्कि उनकी इज़्ज़त रख ली इसके बाद उनके थोड़ी सी सुल्ह की वजहे बतायीं जिस पर वह खामोश से हो गए और अब वह उठकर इमाम हुसैन (अ0) के पास आए और खुद ही यह क़िस्सा पेश किया कि हम से इमाम हसन (अ0) से बात–चीत हुई है। आप ने इमाम हसन (अ0) का जवाब सुनने के बाद फरमाया : सदूक़ा अबु मुहम्मद यानी हज़रत इमाम हसन (अ0) ने बिलकुल सच फरमाया। मौक़ा ऐसा ही था और उस मौक़े की ज़रूरत भी यही थी।

कुछ सूरमा क़िस्म के आदमी आए और उन्होंने कहा : आप हसने मुजतबा (अ0) को छोड़िये, वह सुल्ह के उसूल पर बाक़ी रहें मगर आप उठिये हम आपके साथ हैं अचानक हुकूमते शाम पर हल्ला बोल दें। इमाम हुसैन (अ0) ने फरमायाः ग़लत बिलकुल ग़लत, हम ने अहद कर लिया है और अब हम पर इसका एहतेराम ज़रूरी है हाँ उसी वक़्त हज़रत ने यह कह दिया कि तुम में से हर एक को उस वक़्त तक बिलकुल चुप–चाप बैठा रहना चाहिए जब तक यह शख़्स यानि मुआविया ज़िन्दा है। यह आपकी समझदारी थी। आप जानते थे कि मुआविया की तरफ से आख़िर में और शर्तों के साथ इस शर्त की मुख़ालिफत होगी कि उन्हें अपने बाद किसी को नामज़द नही करना चाहिए, उस वक़्त हमें उठने का मौक़ा होगा।

अब कौन कह सकता है कि हसन (अ0) की सुल्ह के बाद हुसैन (अ0) की जंग किसी पालीसी का बदलना, शर्मिन्दगी या पशेमानी या राय के अलग–अलग होने का नतीजा थी? 20 साल पहले कहा जा रहा है कि हमें उस वक़्त तक ख़ामोश रहना चाहिए जब तक मुआविया ज़िन्दा है इससे ज़ाहिर होता है कि 20 साल के लम्बे रास्ते के सारे पत्थर नज़र के सामने हैं और

पूरा प्रोग्राम पहले से बना हुआ तैयार है इसके मानी यह है कि लम्बी ख़ामोशी भी उसी अहद के लिए ज़रूरी है और उस वक़्त क़दम बढ़ाने का भी उसी अहद के लिए हक़ होगा। क्या इसके बाद भी इसमें कोई शक है कि हसने मुजतबा (अ0) की सुल्ह हुसैन इब्ने अली की जंग की एक शुरुआत ही थी और कुछ नहीं।

41 हिजरी में यह सुल्ह हुई और 60 हिजरी में मुआविया ने इन्तिक़ाल किया इस बीस साल के लम्बे ज़माने में क्या–क्या मुश्किलात सामने आए और हुकूमत के लोगों ने क्या–क्या तकलीफ़े पहुँचायीं मगर इन सारे हालात के बाद भी जिस तरह रसूल (स0) के साथ अली (अ0) मक्का की तेरह साल की ज़िन्दगी में, जिस तरह हज़रत अली (अ0) के साथ हसन मुजतबा (अ0) और खुद हुसैन (अ0) 25 साल की किनाराकशी के ज़माने में, उसी तरह हज़रत इमाम हसन (अ0) के साथ इमाम हुसैन (अ0) दस साल के उनकी ज़िन्दगी के ज़माने में जो सुल्ह के बाद था जबकि उस ज़माने के हालात को वह किन गहरे दिली असरात के साथ देखते थे उन का अन्दाज़ा खुद उनके ही अल्फाज़ से होता है जो उन्होंने हज़रत इमाम हसन (अ0) के जनाज़े पर मरवान से कहे थे, जब मरवान ने हसन (अ0) की वफात पर अफसोस ज़ाहिर किया तो इमाम हुसैन (अ0) ने फरमाया कि अब अफसोस कर रहे हो और ज़िन्दगी में उनको तुम ग़म और ग़ुस्से के घूँट पिलाते थे जो कि याद हैं मरवान ने जवाब दिया बेशक! वह ऐसे के साथ था जो इस पहाड़ से ज़ियादा बर्दाश्त करने वाला और सुकून वाला था।

यह तारीफ उस वक़्त मरवान हज़रत इमाम हुसन (अ0) की कर रहा था जो दुनिया से उठ चुके थे। मगर क्या इस तारीफ में खुद हुसैन (अ0) भी हिस्सा न रखते थे? क्या इस लम्बे ज़माने में उन्होंने कोई हरकत की जो हसने मुजतबा के सुकून के मसलक के ख़िलाफ होती? फिर इमाम हसन (अ0) के जनाज़े के साथ जो नापसन्दीदा सूरत पेश आई वह रसूल (स0) के रौज़े पर दफन से रोका जाना। वह तीरों का बरसाया जाना, यहाँ तक कि कुछ तीरों का इमाम हसन (अ0) के जिस्म तक पहुँचना। यह सब्र वाले हालात और इन सबको इमाम हुसैन (अ0) का बर्दाश्त करना।

कोई शायद कहे कि हुसैन क्या करते? बेबस थे मगर क्या कर्बला में हुसैन को देखने के बाद वह यह कहने का हक़ रखता है? कर्बला में तो सामने कम से कम 30 हज़ार थे और हसन (अ0) के जनाज़े पर रास्ता रोकने वाली जमात ज़ियादा से ज़ियादा कई सौ होगी। हुसैन के साथ अब्बास (अ0) भी है जो उस वक़्त 22 साल के मुकम्मल जवान थे जनाब मुहम्मदे हनफिया भी थे जिनकी बहादुरी का तजुर्बा दुनिया को हज़रत अली इब्ने अबी तालिब (अ0) के साथ जमल और सिफ्फीन में हो चुका था। मुस्लिम बिन अक़ील भी थे जिन्हें बाद में पूरे कूफा के मुक़ाबिले में अकेले हुसैन ने भेज दिया और उन्होंने अकेले वह बेमिसाल बहादुरी दिखायी जो तारीख़ में यादगार है।

अली अकबर (अ0) भी एक पक्के क़ौल के हिसाब से उस वक़्त 15 साल के थे जो कर्बला के क़ासिम से ज़ियादा उम्र वाले थे और तमाम बनी हाशिम भी थे फिर कुछ तो आले रसूल (स0) के वफादार गुलाम और दूसरे मददगार और अन्सार भी मौजूद ही थे इस सूरत में हज़रत इमाम हुसैन (अ0) के अमल को बेबसी का नतीजा समझना

कहाँ ठीक हो सकता है।

मगर हुसैन (अ0) खामोश रहते हैं और इन सबको ख़ामोशी पर मजबूर रखते हैं इमाम हसन (अ0) का जनाज़ा वापस ले जाते है जन्नतुल बक़ी में दफन कर देते हैं और इसके बाद दस साल हसनी सुल्ह के तरीक़े पर गुज़ार देते हैं और इस तरह यह साबित हो जाता है कि वह बड़े भाई का दबाव या मेहरबानी और इज़्ज़त का तक़ाज़ा न था बल्कि इस्लाम के फाएदे का लिहाज़ था जिसके वह भी हिफाज़त करने वाले थे और अब यह भी हिफाज़त करने वाले हैं।

और इधर शाम की हुकूमत की तरफ से इस सारे ज़माने में हर–हर शर्त की मुख़ालिफत हो रही थी। चुन–चुन कर अली (अ0) के दोस्तों को क़त्ल किया जा रहा था और वतन से निकाला जा रहा था। कैसे–कैसे लोग? हिज्र बिन अदी (रज़ि0) और उनके 16 साथी। यह दमिश्क़ के बाहर मर्जे अज़रा में सूली चढ़ा दिए जाते हैं।

हाफ़िज़ इब्ने हजर अस्क़लानी लिखते हैं कि यह हिज्र बिन अदी (रज़ि0) बड़े सहाबियों में से थे। फ़िक़ह के मसाएल में अगर इनके मसले इकटठा किए जाएँ तो एक हिस्से का रिसाला हो जाए। मगर अली (अ0) के दोस्त थे इसलिए इनकी सहाबियत भी काम न आ सकी। कूफा से क़ैद करके दमिश्क़ बुलवाए गए, शाम के हाकिम ने अपने दरबार में बुलाकर इनसे पूछ–ताछ करने या सफाई देने का भी मौक़ा पसन्द न किया। हुक्म हुआ कि शहर के बाहर ही रोक दिए जाएँ और वहीं सूली दे दी जाए। इनकी शहादत इतनी दर्दनाक थी कि अब्दुल्लाह इब्ने उमर (रज़ि0) ने इसका बयान सुना तो चीख़ें मार कर रोने लगे। उम्मुल मोमिनीन आएशा (रज़ि0) को ख़बर हुई तो उन्होंने कहा : आख़िर मुआविया खुदा को क्या जवाब देगा, कि ऐसे–ऐसे नेक मुसलमानों का खून कर रहा है।

अम्र बिनुल हमक़ अलख़ज़ाओ वह बुज़ुर्ग थे जिन्हें रसूल (स0) ने ग़ाएबाना तौर पर अपना सलाम पेश किया था उनका सर काट कर नेज़े की नोक पर उठाया गया, यह सबसे पहला सर था, जो इस्लाम में नेज़े पर उठाया गया।

इन हादसों से अब्दुल्लाह इब्ने उमर (रज़ि0) और आएशा (राज़ि0) बिन्ते अबिबक्र ऐसे लोग इतना मुतास्सिर थे तो हुसैन (अ0) इब्ने अली (अ0) जिनके बुज़ुर्ग वालिद की मुहब्बत के बदले में ही यह सब हो रहा था जितना भी मुतास्सिर होते कम था।

फिर हज़रत इमाम हसन (अ0) की दस साल तक खामोशी और आगे न आने की जो क़ीमत उनको मिली यानी क़त्ल किया जाने वाला ज़हर और कलेजे के बहत्तर टुक्ड़े और फिर उनकी वफात पर दमिश्क़ के महल से खुशी दिखाने के लिए अल्लाहु अकबर की ऊँची आवाज़ इन सब बातों के बाद हज़रत इमाम हुसैन (अ0) की ख़ामोशी। क्या किसी में हिम्मत है जो उस वक़्त के हुसैन पर जंग करने का इल्ज़ाम लगा सके?

अब इसके बाद वह हंगामा सामने आया जिसे इमाम हुसैन की आँखें बीस साल पहले देख रहीं थीं यानि शाम के हाकिम ने अपने बेटे यज़ीद की ख़िलाफत की बुनियाद डाल दी और उसके लिए इस्लामी दुनिया का दौरा किया।

अब इमाम हुसैन (अ0) के लिए वह रास्ता सामने आ गया जो बैअत के इन्कार से शुरु हुआ और आख़िर तक बैअत के इन्कार ही की शक्ल

में बाक़ी रहा।

फिर इस बैअत के इन्कार को क्या कोई वक़्ती, जज़बाती फैसला या हंगामी जोश का नतीजा समझा जा सकता है?

याद रखना चाहिए कि बैअत का इन्कार तो अभी तक क़ानूनी जुर्म न बना था। ख़िलाफते सलासा में बहुत से लोगों ने बैअत न की। हज़रत अली (अ0) के दौर में अब्दुल्लाह इब्ने उमर (रज़ि0) ने बैअत नही की उसामा इब्ने ज़ैद (रज़ि0) ने बैअत नहीं की, साद इब्ने वक़ास ने बैअत नही की, हस्सान बिन साबित ने बैअत नही की, मगर इन बैअत न करने वालों का क़त्ले वाजिब नही समझा गया।

इमाम हुसैन (अ0) ने बैअत न करके अपने को बातिल की हिमायत से अलग कर किया बस! इसके अलावा कोई क़दम नही उठाया, मगर मुआविया के बाद जब यज़ीद हुकूमत में आया तो उसने पहला ही हुक्म अपने गवर्नर वलीद को भेजा कि हुसैन (अ0) से बैअत लो और बैअत न करें तो उनका सर क़लम करके भेज दो। यह सख़्ती की शुरुआत किधर से हो रही है? मदीने के हाकिम को इस हुक्म के पूरा करने की हिम्मत न हुई तो उसे हटा दिया गया। इमाम हुसैन (अ0) को अगर सख़्ती से काम लेना होता तो आप मुआविया के हलाक होने की ख़बर सुनते ही मदीने के तख़्त व ताज पर क़ब्ज़ा कर लेते जो उस वक़्त उनके लिए कुछ मुशकिल न था। इसके बाद कम से कम इस्लामी दुनिया बंट तो ही जाती मगर आप ऐसा नही करते बल्कि मक्के जाकर मक्के में पनाह लेने के मानी यह हैं कि हमें किसी की जान नही लेनी है अपनी जान बचानी मन्ज़ूर है, यह ''हम वजूदी'' का अमली पैग़ाम है।

देखने में अगर यहाँ ठहरने का इरादा हमेशा का न होता तो हज का एहराम क्यों बाँधते? हज का एहराम बाँधना खुद हज की नियत की दलील है और नियत के बाद बिना वजह हज तोड़ना जाएज़ नहीं। हज़रत इमाम हुसैन (अ0) से बढ़कर शरीअत के मसलों को कौन जानता होगा और यह उनकी मुख़ालिफत करने वाला भी ख़याल नही कर सकता कि वह जान–बूझ कर शरीअत के हुक्म की (माआज़ल्लाह) मुख़ालिफत करेंगे और वह भी कब? जब हज को सिर्फ एक दिन बाक़ी है।

वह जिन का शौक़ यह था कि मदीने में आ–आ कर 25 हज पैदल कर चुके हैं अब मक्के में मौजूद होते हुए हज को उमरे में बदल देते और मक्के से चले जाते हैं। इस तरीक़े से खुद नज़र आता है कि इसकी वजह ग़ैर मामूल और हंगामी है तो हर एक पूछ रहा था और बड़ी वहशत और परेशानी के साथ। ''अरे! आप इस वक़्त मक्का छोड़ रहे हैं?''

यह हर सवाल इमाम (अ0) के दिल पर एक तीर था। हर एक से कहाँ तक बताते, किसी–किसी से कह दिया कि न निकलता तो वहीं क़त्ल कर दिया जाता और मेरी वजह से ख़ान–ए–काबा की हुरमत बरबाद हो जाती।

मक्के में आना भी ख़तरे का जहाँ तक टालना था और अब मक्के से जाना भी यही है अब आप कूफा तशरीफ लिए जा रहे हैं। जहाँ के लोगों ने आपको अपनी दीनी हिदायत और एख़लाक़ी सुधार के लिए दावत दी मगर बीच में फौजे हुर आकर रास्ता रोकती है अब आप पहला काम यह करते हैं कि उस पूरी फौज को जो प्यासी है पानी पिला देते हैं। यह फैय्याज़ी भी जंगी अन्दाज़ से

बिलकुल अलग है इसके बाद वह मौक़ा आया कि नहर पर ख़ेमों के लगाने को रोका गया उस वक़्त साथियों की तेवरियों पर बल थे मगर इमाम (अ0) ने फरमाया कि मुझे जंग में शुरुआत करनी नही है। रेत पर ही ख़ेमे लगा लो। यह नफ्स पर रोक और कन्ट्रोल व बर्दाश्त वह कर रहा है जिसे आख़िरकार जान पर खेल जाना और अपना पूरा घर कुर्बान कर देना है मगर वह उस वक़्त होगा जब उसका वक़्त आयेगा और यह उस वक़्त है जब इसका वक़्त है।

फिर उमरे साद कर्बला में पहुँचता है तो आप खुद उसके पास सुल्ह की बात–चीत के लिए पैग़ाम भेजते हैं, मुलाक़ात होती है तो शर्तें ऐसी रखते हैं कि इब्ने साद खुद अपने हाकिम अब्दुल्लाह बिन ज़ियाद को लिखता है कि लड़ाई और झगड़े की आग ठण्डी हो गई है और अमनो सुकून में कोई रुकावट न रही। हुसैन मुल्क छोड़ने तक के लिए तैयार है इसके बाद खून बहाने की कोई वजह नही।

अब यह तो मुख़ालिफ जमात का काम है कि उसने ऐसे सुल्ह वाले ख़याल की इज़्ज़त न की और सुल्ह के लिए बढ़े हुए हाथ को झटककर पीछे हटा दिया लेकिन इस शर्त पर मुख़ालिफ हुकूमत राज़ी हो गई होती। फिर हज़रत इमाम हसन (अ0) और इमाम हुसैन (अ0) की फितरत में किसी एख़तिलाफ का ख़याल करने वालों के ख़याल की क्या बुनियाद बाक़ी रह सकती है और सूरतेहाल के समझने के बाद अब भी यह ख़यालात तो ग़लत साबित हो ही गए मगर वह इब्ने ज़ियाद की फिरऔनियत और यज़ीद की चाहत को पूरा करना था कि उसने हज़रत इमाम हुसैन (अ0) पर सुल्ह के सभी रास्तों को बन्द कर दिया।

फिर भी जब नवीं तारीख को तीसरे पहर हमला हो गया तो हज़रत (अ0) ने एक रात की मोहलत ले ली। जिसे जंग करना ही था वह जंग ख़त्म करने की दरख़ास्त क्यों करता, मगर इस एक रात की मोहलत को हासिल करके भी आपने अपनी अमन पसन्दी का सबूत दिया और दिखला दिया कि जंग तो मुझ पर ज़बरदस्ती लादी जा रही है मैं जंग का अपनी तरफ से शौक़ नही रखता हूँ।

फिर आशूर की सुब्ह कोई वक़्त ऐसा नही छोड़ा जो नसीहत, दलील के पूरा करने और वसीयत करने में न लगाया हो, खुत्बा जो पढ़ा वह ऊँट पर सवार होकर पढ़ा कि वह अमन की सवारी है घोड़े पर नहीं सवार हुए जो जंग को भड़काने वाला होता है।

इसके बावजूद कि खुत्बे के जो जवाब मिले वह दिल तोड़ने वाले थे मगर इसके बाद भी आपने इस का इन्तिज़ार किया कि दुश्मन की फौज से शुरुआत हो और जब पहला तीर उमरे साद ने चिल्ल–ए–कमान में जोड़ कर अपनी फौज से कहते हुए यह कहकर लगाया कि ''गवाह रहना पहला तीर हुसैनी फौज की तरफ मैं छोड़ रहा हूँ।'' और इसके बाद चार हज़ार तीर कमानों से चल गए और हुसैनी जमात की तरफ आ गए। उस वक़्त मजबूर होकर इमाम (अ0) ने जिहाद की इजाज़त दे दी और इसके बाद भी खुद उस वक़्त तक जिहाद के लिए तलवार नियाम से नहीं निकाली जब तक आप की ज़ात में इन्हेसार नही हो गया जब तक एक भी बाक़ी रहा तलवार नही चलाई और इस तरह पैग़म्बर (स0) के किरदार की तफसीर कर दी जब कोई न रहा उस वक़्त तलवार खींची और यह ऐसा वक़्त था जब किसी दूसरे में दम न होता कि वह हिल भी सके। तीन दिन की भूख प्यास और इस

पर सुब्ह से शाम तक सूरज की गर्मी में शहीदों की लाशों का उठाना और फिर ख़ैमे की तरफ पलटना और फिर बहत्तर के दाग़, अज़ीज़ों के सदमें और उनकी लाशों का उठाना, जवान बेटे का आँख की रौशनी ले जाना और भाई का कमर तोड़ जाना, और अपने हाथों पर एक दूध पीते बच्चे का दम टूटते हुए सम्भालना और तलवार की नोक पर अभी–अभी उसकी क़ब्र बनाकर उठना। अब इस हाल में नफ्स के जज़्बात का तक़ाज़ा तो यह है कि आदमी ख़ामोशी से तलवारों के सामने अपना सर बढ़ा दे और खंजर के आगे गला रख दे मगर हुसैन (अ0) इस्लामी तालीम की हिफाज़त करने वाले थे जुल्म के सामने सुपुर्दगी शरीअत के क़ानून के ख़िलाफ है। हुसैन (अ0) ने अब बचाव का फ़र्ज़ अन्जाम देने और ख़ुदा के दुश्मनों के मुक़ाबले के लिए तलवार उठाई और वह जिहाद क्या जिसने भूली हुई दुनिया को हैदर (अ0) वाली ख़ूबियों की याद दिला दी और इस तरह दिखा दिया कि हमारे काम और अमल, नफ्स के जज़्बात और तबीयत की ज़रूरतों के गुलाम नही हैं बल्कि फराएज़ और वाजिबात को पूरा करने और रब के हुक्मों को पूरा करने के गुलाम होते हैं चाहे फितरी ज़रूरतें इसके कितनी ही ख़िलाफ हों।

यही इन्सानियत की वह मेअराज है जिसको इमाम हुसैन (अ0) के बाद वाले बताते रहे और वही आज हुसैन (अ0) के किरदार में बहुत ही चमक के साथ नज़र आ रही है।

dcZyk

आसीफ़ जायसी

कर्बला ममनून है संसार तेरा आज तक
नौऐ इन्सानी को है इक़रार तेरा आज तक

किस क़दर दुरबार है दरबार तेरा आज तक
ज़र्रा–ज़र्रा है दुरे शहवार तेरा आज तक

सोने वालों को जगाती है सदाए इंक़िलाब
है सफर में जज़्ब–ए–बेदार तेरा आज तक

ता क़यामत मदरसा है तू ज़माने के लिए
शहर है कुर्आने लाला ज़ार तेरा आज तक

शरबते दीदार में तेरे है मेराजे हयात
कौन है आसूद–ए–दीदार तेरा आज तक

ओढ़ ली तू ने रिदाए ज़िन्दगी, है इसलिए
मौत से अज़ाद हर बीमार तेरा आज तक

हाकेमियत क्यों बशर की लरज़ा बर अन्दाम है
कल से लेकर जारी है इन्कार तेरा आज तक

नफ़्स की तामीर होती है तेरे माहोल में
काम में मसरूफ है मेअमार तेरा आज तक

तेरी खुशबु–ए–वफा से है मुअत्तर काएनात
किस क़दर शादाब है गुलज़ार तेरा आज तक

सर यज़ीदियत उठाए भी तो वह कैसे उठाए
जौरो इस्तेबदाद पर है वार तेरा आज तक

तेरे मक़सद पर कभी भी आँच आ सकती नहीं
है पसे पर्दा अमानत दार तेरा आज तक

आलमे इन्सानियत की कर रहा है शान से
रहनुमाई क़ाफिला सालार तेरा आज तक

क्या हक़ीक़त है ''आसीफ़े जायसी'' की सच यह है
मोतक़िद है हर बड़ा फन्कार तेरा आज तक